

लागक विभेद (GENDER DIFFERENTIATION)

भारतीय समाज का एक दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष लैंगिक विभेद भी है। जैविकीय या शारीरिक दृष्टिकोण से तो सम्पूर्ण मानव-जाति में स्त्री और पुरुष के बीच अन्तर देखने को मिलता है, लेकिन लैंगिक विभेद का जो भयानक रूप भारतीय समाज में पाया जाता है, वह अपने आप में अनूठा तो है ही, निराशाजनक, दुर्भाग्यपूर्ण और अनुचित भी है। भारत में लैंगिक विषमता की प्रकृति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास करें तो यह बात संस्थाओं से आरम्भ होती है। फिर धर्म, परम्पराओं, नैतिकता व कानूनों की आड़ लेकर इस राजनीति का सम्पूर्ण व्यवस्था में विस्तार किया जाता है। इस व्यवस्था की शिकार महिलाओं को पहले घर की चारदीवारी में दबाया जाता है और फिर उसे आर्थिक, राजनीतिक व कानूनी अधिकारों से वंचित करके उसे कमजोर किया जाता है। इस तरह पुरुष वर्चस्व के साथे में एक ऐसा पितृसत्तात्मक पारिवारिक-सामाजिक ढाँचा खड़ा हो जाता है जहाँ स्त्री का जीवन श्रम, शरीर और उसकी 'कोख' पर पुरुष का अधिकार हो जाता है और स्त्री उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति बनकर रह जाती है। मूल रूप में स्त्री ही परिवार को अपना कर्मक्षेत्र मानकर अपनी समस्त रचनात्मक शक्तियों से उसे सजाती-संवारती है। हर छोटे-बड़े सदस्य की जरूरतों को पूरा करना अपना कर्तव्य समझती है। स्त्री की सारी दुनिया परिवार में ही आकर सिमट जाती है। किन्तु जब परिवार का यही सुरक्षा कवच उसके जीवन का केन्द्र बिन्दु उसके लिए सबसे असुरक्षित और दुःखदायी हो जाता है तो स्त्री के पास 'मन-मसोस' कर जीवित रहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता है। कुछ भी हो, भारतीय समाज में लैंगिक विभेद की वास्तविक स्थिति जानने के लिए सबसे पहले हम विभिन्न युगों में भारतीय नारी की स्थिति का अध्ययन करेंगे।

विभिन्न युगों में भारतीय स्त्रियों की स्थिति या स्थान (Position of Indian Women in Different Ages)

विभिन्न युगों में भारतीय स्त्रियों की स्थिति का चित्र निम्नांकित है—

(1) **वैदिक युग—सम्भवतः**: वैदिक युग हिन्दू-समाज का स्वर्ण-युग था। इस युग में स्त्रियों की स्थिति न केवल अच्छी थी, बल्कि अत्यन्त उन्नत थी। वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय स्त्रियों की स्थिति उनके आत्मविकास, शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि के सम्बन्ध में प्रायः पुरुषों के समान थी। पली के रूप में तो उनकी स्थिति बहुत ऊँची थी। घर में उसे 'रानी' की तरह रहने का आशीर्वाद दिया जाता था।

ऋग्वेद के अनुसार 'पत्नी' ही घर है। महाभारत के कथनानुसार 'घर, घर नहीं यदि उस घर में पत्नी नहीं।' गृहणीहीन घर 'जंगल' है। पूर्वमीमांसा का मत है कि पति-पत्नी दोनों सम्पत्ति के स्वामी होते हैं, अतः उन्हें संयुक्त रूप से यज्ञ करना चाहिए। अपत्नीक व्यक्ति को यज्ञ करने का अधिकार नहीं था।

वैदिक युग में लड़कियों की गतिशीलता पर कोई रोक नहीं थी और न ही मेल-मिलाप और शिक्षा प्राप्त करने के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध था। उस समय बहुपत्नी-विवाह अवश्य प्रचलित था, परन्तु स्त्रियों को आदर से रखा जाता था। विधवाओं के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं था। विधवा अपने देवर या अन्य व्यक्ति से विवाह कर सकती थी। वह सती भी हो सकती थी यद्यपि सती-प्रथा का विशेष प्रचलन न था।

(2) उत्तर-वैदिक काल—वैदिक युग में स्त्रियों की जो ऊँची स्थिति थी, वह अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। धर्मसूत्र में बाल-विवाह का निर्देश दिया गया जिससे स्त्रियों की शिक्षा में बाधा पहुँची और उनकी शिक्षा मामूली स्तर पर आ गयी। चूँकि उन्हें पढ़ने-लिखने के अवसर प्राप्त न थे इस कारण वेदों का ज्ञान असम्भव हो गया। उनके लिए धर्मिक संस्कार में भाग लेने की मनाही हो गयी। उनका प्रमुख कर्तव्य पति का आज्ञापालन हो गया। विवाह स्त्रियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया। विधवा-विवाह पर निषेध जारी किया गया। बहुपत्नी-प्रथा का प्रचलन और बढ़ा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक युग की तुलना में उत्तर-वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति नीची थी। स्मृति युग में स्त्रियों की स्थिति और भी गिर गयी। उनका जो कुछ भी सम्मान इस युग में होता था, वह केवल माता के रूप में होता था न कि पत्नी के रूप में। इस युग में विवाह की आयु घटाकर 12-13 वर्ष कर दी गयी। विवाह की आयु घटने से शिक्षा न के बराबर हो गयी। इस युग में स्त्रियों के समस्त अधिकारों को प्रायः छीन लिया गया।

(3) मध्यकालीन युग—इस युग में, विशेषकर मुगल-साम्राज्य की स्थापना के बाद, स्त्रियों की दशा और भी दयनीय हो गयी। ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म की रक्षा और स्त्रियों के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता को बनाये रखने के लिए स्त्रियों के सम्बन्ध में नियमों को और भी कठोर बना दिया। ऊँची जातियों में स्त्री-शिक्षा प्रायः समाप्त हो गयी। पर्दा-प्रथा को और भी प्रोत्साहन मिला। लड़कियों की विवाह की आयु घटकर 8-9 वर्ष रह गयी। इसके फलस्वरूप बचपन से ही उनके ऊपर घर-गृहस्थी का भार लद गया। गृहस्थी ही उनके समस्त कर्मों और आशाओं का एकमात्र केन्द्र बन गयी। विधवाओं का पुनर्विवाह पूर्ण रूप से समाप्त हो गया और सती-प्रथा तो इस समय चरम सीमा पर पहुँच गयी। संक्षेप में, स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने के लिए इस युग में हिन्दुओं ने उन्हें जन्म से मृत्यु तक पुरुष के अधीन कर दिया और उनके समस्त अधिकारों एवं स्वतन्त्रता को छीन लिया।

इस युग में केवल स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार के सम्बन्ध में कुछ सुधार हुआ तथा विधवाओं को पति की सम्पत्ति पर कुछ अधिकार मिला। इसके अतिरिक्त जिन लड़कियों के भाई न थे उन्हें भी अपने पिता की सम्पत्ति पर उत्तराधिकार मिलने लगा।

आधुनिक युग (स्वतन्त्रता के पूर्व तक) में भारतीय स्त्रियों की स्थिति

(POSITION OF INDIAN WOMEN IN MODERN AGE BEFORE INDEPENDENCE)

मध्यकालीन युग में तो स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी ही पर आधुनिक समय में भी उनकी निर्योग्यताएँ बहुत कम नहीं हुई अर्थात् उनकी स्थिति अधिक नहीं सुधारी। लैंगिक विभेद के चलते स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक भारतीय समाज में स्त्रियों जिन निर्योग्यताओं का शिकार थीं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

1. सामाजिक निर्योग्यताएँ—सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में स्त्रियों की कुछ निर्योग्यताएँ इस प्रकार थीं—

(अ) शिक्षा—भारत में काफी समय से स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहा है। इस देश में शिक्षा केवल नौकरी के लिए ही आवश्यक समझी जाती है और चूँकि स्त्रियों के लिए नौकरी करना उचित नहीं समझा जाता, अतः उनके लिए शिक्षा की भी आवश्यकता नहीं समझी गयी। बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा, दोनों ही, इस युग में स्त्रियों की शिक्षा में बाधक थीं।

(ब) नौकरी—परम्परागत रूप में स्त्रियों का घर से बाहर काम करना पारिवारिक सम्मान के विरुद्ध समझा जाता है। वे माता पहले हीं और उपर्जिका (Earner) बाद में। स्वतन्त्रता से पूर्व तक स्त्रियाँ न के बराबर ही नौकरी करते हुए देखी जा सकती थीं।

(स) समिति और संघ—लड़कियों द्वारा समिति और संघ बनाना एक नवीन कल्पना है। स्वतन्त्रता के पूर्व तक इसे उचित नहीं समझा जाता था। स्त्रियों में शिक्षा का अभाव और पर्दा-प्रथा का अत्यधिक प्रचलन होने के कारण किसी प्रकार की समिति या संघ का संगठन करना उनके लिए प्रायः एक स्वप्न था।

2. आर्थिक निर्योग्यताएँ—सन् 1937 से पहले स्त्रियों को सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था। संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में इनका अधिकार लेशमात्र भी नहीं था, अविवाहित कन्या का भी संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अधिकार नहीं था; पैतृक सम्पत्ति में उनका अधिकार लड़कों और विधवाओं के बाद आता था; विवाहित स्त्री को स्त्रीधन के अतिरिक्त और किसी अन्य प्रकार के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार व्यावहारिक रूप में प्राप्त नहीं थे।

3. पारिवारिक निर्योग्यताएँ—स्त्रियाँ अपने पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में भी अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं का शिकार थीं। माता के रूप में स्त्रियों की स्थिति परिवार में कुछ अच्छी थी और वह भी उस अवस्था में यदि पिता का देहान्त न हुआ हो। विधवा माताओं की अवहेलना 'भारतीय परिवार की एक सामान्य विशेषता रही है। पली के रूप में उनकी स्थिति काफी दयनीय थी, पुरुषों की दृष्टि में वे दासी थीं और पति उन्हें मारना-पीटना तथा उनका अनादर करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। इसी प्रकार वधू के रूप में भी स्त्रियों की दशा पली के समान ही दयनीय थी। सास-ससुर की सेवा करना उनका परम कर्तव्य माना जाता था और इस सेवा के बदले वधू को सास के कटु अत्याचार पुरस्कार के रूप में मिलते थे। पुत्री के रूप में तो स्त्रियों की स्थिति और भी चिन्ताजनक थी, उन्हें परिवार पर एक बहुत बड़ा भार समझा जाता था और उनका शीघ्रातिशीघ्र विवाह कर दिया जाता था। विवाह के सम्बन्ध में उनकी स्वीकृति, इच्छा या अनिच्छा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। इतना ही नहीं, विधवा के रूप में, चाहे वह विधवा बहू हो, लड़की या माँ, स्त्रियों की बहुत ही दुर्गति परिवार में होती थी। उन्हें परिवार में नीचे से नीचा कार्य करना पड़ता था और प्रायः दासी की तरह जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

4. राजनीतिक निर्योग्यताएँ—सन् 1919 तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार भी पूर्णतया प्राप्त नहीं था। सन् 1919 की सुधार योजना में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने स्त्रियों को मताधिकार देने का प्रश्न प्रान्तीय परिषद पर छोड़ दिया। 1935 के विधान (Act) में भी इस सम्बन्ध में कोई विशेष सुधार नहीं हुए और स्त्रियों को मताधिकार केवल उनकी शिक्षा, पति की स्थिति, सम्पत्ति आदि के आधार पर दिया गया।

आधुनिक युग में भारतीय नारी की स्थिति (Position of Indian Women in Modern age)

शायद कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। उनमें सामाजिक चेतना की एक नई लहर देखने को मिलती है। जो स्त्रियाँ किसी समय घर के बाहर तो दूर घर के दरवाजे या खिड़की में से बाहर झाँक भी नहीं सकती थीं, वही आज घर के बाहर नौकरी करती हैं, सिनेमा देखने जाती हैं, मित्रों के साथ मॉल में शॉपिंग करती हैं, समिति और संघ की सदस्य बनती हैं, पार्टीयों का आयोजन करती हैं, क्लब जाती हैं और इसी प्रकार के अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनैतिक कार्यक्रमों में भाग लेती हैं। परिवार और विवाह के सम्बन्ध में भी उनकी स्थिति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी है। माता-पिता अब अपनी कन्या का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में नहीं कर सकते। वे अपनी पसन्द से अन्तर्जातीय विवाह कर सकती हैं और कर भी रही हैं। कानूनी रूप में वे पिता, पति व पुत्र की सम्पत्ति में से हिस्सेदार हैं। उनकी आर्थिक स्थिति अब बेहतर है। वे पति को तलाक भी दे सकती हैं और गुजारे-भत्ते की हकदार भी हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे काफी आगे हैं। राजनैतिक क्षेत्र में भी उन्हें पर्याप्त अधिकार हैं। आज भारत की प्रत्येक नारी को जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो, वोट देने तथा स्वयं लोकसभा, राज्यसभा, विधानमण्डल, स्थानीय निकायों आदि के लिए उम्मीदवार होने का अधिकार है। इसके फलस्वरूप देश में स्त्रियों में पर्याप्त राजनैतिक चेतना आयी है। आज स्त्रियाँ सांसद भी हैं, मंत्री भी हैं, मुख्यमंत्री भी, मेयर भी और जिला पंचायत की सदस्य व अध्यक्षा भी और तो और संसार के महान लोकतन्त्र भारत की सफलतम प्रधानमंत्री एक महिला श्रीमती इंदिरा गांधी रही हैं। स्त्रियों में राजनीतिक चेतना का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि आज हमारे देश की राष्ट्रपति एक महिला श्रीमती प्रतिभा पाटिल हैं और केन्द्र में सत्तासीन कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा भी एक महिला श्रीमती सोनिया गांधी हैं।

भारतीय नारी की ये सब उपलब्धियाँ सच हैं, पर उनकी स्थिति का अन्धकार पक्ष। हमें इस सत्य को नहीं भूलना चाहिए कि ये सब उपलब्धियाँ शहरी महिलाओं तक ही सीमित हैं और शहरों में कुल भारतीय जनसंख्या का केवल एक-चौथाई भाग (25.7 प्रतिशत) ही निवास करता है। शेष 74.3 प्रतिशत जनता गाँव की परम्पराओं तथा रुद्धियों से आबद्ध समाज से सम्बन्धित है। वास्तविकता यह है कि भारतीय गाँवों और नगरों के रुद्धिवादी परिवारों में स्त्रियों की स्थिति अब भी अधिक अच्छी नहीं है। वे अब भी पर्दा-प्रथा को उचित समझते हैं और शिक्षा को स्त्रियों को बिगाड़ने वाली चीज। विवाह के सम्बन्ध में रुद्धिवादी परिवारों में कर्ता अब भी लड़की की इच्छा या पसन्द को जानने की आवश्यकता नहीं समझते और लड़की विशेषकर वधू का घर से बाहर जाकर नौकरी करना अपनी शान के खिलाफ मानते हैं तथा उसके सामाजिक मेल-मिलाप आदि पर अनेक प्रतिबन्ध लगाते हैं। भारतीय समाज अब भी अन्य समाजों की तुलना में अधिक परम्परागत है, जहाँ 'कन्या' को पराया धन लगाते हैं। कोई बहुत उदार हुआ भी, तो कहता है कि हमने बेटी का लालन-पालन बेटे की तरह किया है। यानी माना जाता है। कोई यह नहीं कहता कि हमने अपने बेटे को बेटी की तरह पाला है। जाहिर है कि इसे सकारात्मक नहीं माना जाता। यहाँ भेदभाव की स्थिति है। निश्चित रूप में, भारतीय समाज में लैंगिक विभेदों के चलते स्त्रियों की स्थिति के इस पक्ष की अनदेखी नहीं की जा सकती।

वर्तमान भारत में लैंगिक विभेद और महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता (Gender-Differentiation and Need for Women's Empowerment in Modern India)

वास्तव में मानव-समाज का इतिहास स्त्रियों को सत्ता, प्रभुता और शक्ति से दूर रखने का इतिहास है और इसीलिए प्रत्येक देश, काल, वर्ग, जाति एवं धर्म में महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष न आने देने की संरचनात्मक व सांस्कृतिक बाध्यताएँ बनाई गई हैं। मुश्त्री राधा ओझा ने इस तथ्य को अत्यन्त मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हुए लिखा है, "सामाजिक संरचना में उपस्थित अनेकानेक विभेदों में स्त्री एवं पुरुषों का विभेद बुनियादी है क्योंकि यह प्राकृतिक है। किन्तु प्राकृतिक विभेद का निहितार्थ लैंगिक असमानता नहीं है। यह मंतव्य लोकतान्त्रिक दर्शन एवं नारी विमर्श में निरन्तर उभरता रहा है। नारीवादी विमर्श ने कुछ बुनियादी प्रश्नों को इस रूप में उठाया कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष असमान क्यों हैं? उनके अंतर्संबंध अधिपत्य-अधीनता के अंतर्संबंध क्यों हैं? और यह स्थिति इतिहास के प्रत्येक दौर में, परिवर्तन के साथ लगभग सभी सभ्यताओं में, कमोबेश अन्तर के साथ कैसे निरन्तर रही है? एतद् असमानता के बीज प्रकृति में नहीं अपितु समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था की शक्ति संरचनाओं में (पिरुसत्तात्मक व्यवस्था में निहित) हैं।

सन्तुलित, अर्थपूर्ण सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक संरचना एवं विकास में आधी आबादी की सक्रिय सहभागिता की उपेक्षा नहीं, बल्कि उसे सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। इस बात पर सामान्य सहमति उभर रही है।

वस्तुतः: नारी अस्तिमता एवं सशक्तिकरण का प्रश्न मूल रूप से महिलाओं के लोकतान्त्रिक अधिकारों और उनके मानवाधिकारों का प्रश्न है। यह सत्य है कि स्त्री-पुरुष के बीच समानता का सिद्धान्त भारत के संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों तथा नीति-निदेशक सिद्धान्तों में अंतर्निहित है। संविधान न केवल महिलाओं को समान अवसर प्रदान करता है बल्कि सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के लिए कदम उठा सके। महिलाओं के वैधानिक सशक्तिकरण का निश्चय ही यह क्रांतिकारी कदम है। राज्य की भूमिका चाहे महिलाओं के कल्याणकारी दृष्टिकोण की रही हो या गरीबी उन्मूलन की अथवा उन्हें समान अवसर/आरक्षण के माध्यम से शक्ति प्रदान करने की महिला सशक्तिकरण इस दिशा में महत्वपूर्ण रही है।

वर्ष 1967 में संयुक्त राष्ट्र संघ की 'महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव समाप्ति से संबद्ध घोषणा' एवं सदस्य देशों से अपने देशों की महिला प्रस्थिति पर प्रतिवेदन की अनुशंसा पर वर्ष 1971 में भारत सरकार की समाज कल्याण राज्यमंत्री फूलरेणु गुहा के नेतृत्व में 'भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति' (सीएसडब्ल्यूआई) का गठन किया गया। इस समिति ने वर्ष 1974 में अपना प्रतिवेदन 'टुवार्ड्स इक्वालिटी' सरकार को प्रस्तुत किया। स्वाधीन भारत में महिलाओं की स्थिति पर यह पहला विस्तृत प्रतिवेदन था, जिसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है—

- लैंगिक समानता, मात्र सामाजिक न्याय के लिए नहीं अपितु राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए भी आवश्यक शर्त है।

- स्त्रियों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु उनके रोजगार के अवसरों में वृद्धि को सर्वाधिक प्राथमिकता देना आवश्यक है।
- प्रजनन क्षमता की वजह से समाज का महिलाओं के प्रति दायित्व बढ़ जाता है। बच्चों के लालन-पालन में माता के साथ-साथ पिता एवं समाज को भी अपने दायित्वों का निर्वहन करना चाहिए।
- घर के भीतर गृहिणी के कार्य को सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से उत्पादक मानकर राष्ट्रीय बचत एवं विकास में उनके योगदान को स्वीकार करना चाहिए।
- वैधानिक समानता को वास्तविक समानता में बदलना।

समिति की रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो गया कि महिलाओं की स्थिति में वास्तविक सुधार उस समय तक नहीं होगा

जब तक सामाजिक दृष्टिकोणों एवं संस्थाओं में परिवर्तन नहीं होगा।

वर्ष 1975 के बाद की अनुशंसाओं के अनुरूप एवं अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय एवं भारतीय महिला आन्दोलन की पुनः सक्रियता के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए अनेकानेक नीतिगत निर्णय लिए गए। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में पहली बार महिलाओं के विकास पर पृथक् अध्याय रखा गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं उसके बाद राष्ट्रीय कार्ययोजना, 1992 ने बालिका शिक्षा को मुख्य मुद्दा बनाया। राजकीय नीतियों में लैंगिक संवेदनशीलता पर विचार प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रीय महिला कोष एवं स्थानीय स्तरों पर स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में वैकल्पिक रणनीतियों के प्रयोग किए जा रहे हैं। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायतीराज एवं स्थानीय निकायों में महिलाओं को दिए गये आरक्षण के फलस्वरूप लगभग 10 लाख महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सशक्तिकरण की दिशा में मील का पत्थर है। यद्यपि विधानसभाओं एवं लोकसभा में महिला आरक्षण का मुद्दा अभी दोहरे राजनीतिक मापदण्डों का शिकार बना हुआ है। नारी सशक्तिकरण के वैधानिक प्रयासों की शृंखला में भारत सरकार की महिला सशक्तिकरण नीति, 2000 तथा घरेलू हिंसा विधेयक, 2005 एक उल्लेखनीय कदम है। इसके अन्तर्गत राज्य की संस्थाओं विशेषतः पंचायतीराज संस्थाओं, स्वयंसेवी संस्थाओं एवं लैंगिक संवेदनशीलता बढ़ाने की आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया है।

निश्चित ही यह स्वागतयोग्य प्रयास है। हमारे यहाँ संवैधानिक एवं लैंगिक समानता के माध्यम से महिलाओं को सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है। किन्तु महिलाओं की एक बड़ी आबादी आज भी वैधानिक अधिकारों के यथार्थ से दूर है। उपलब्धियों के आँकड़े महत्वपूर्ण हैं, किन्तु ये तथ्य भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं कि वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार यद्यपि लिंगानुपात बढ़ा है (927 से 933) किन्तु 0-6 साल से छोटे बच्चों की मृत्युदर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। यूनिसेफ के एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रति वर्ष 30 लाख भ्रूण हत्याएँ होती हैं। यह मूल रूप से मादा भ्रूण हत्या है। इस परिप्रेक्ष्य में गत दो दशक में एक करोड़ कन्या भ्रूण हत्या किए जाने सम्बन्धी आँकड़े भारत व कनाडा के संयुक्त शोधकर्ताओं द्वारा जनवरी 2006 में जारी एक अध्ययन रिपोर्ट में दिए गए हैं। हाल ही में भारत के परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा किए गए आकलन के अनुसार, भारत में प्रतिवर्ष 40 लाख गर्भपात कराए जाते हैं। इनमें लाखों की संख्या में गैरकानूनी गर्भपात भी शामिल हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट 'द एण्ड ऑफ चाइल्ड लेबर विदिन' में कहा गया है कि विश्व में बाल मजदूरों की संख्या में 11 प्रतिशत की कमी आई है, लेकिन भारत की स्थिति जस की तस है। बाल मजदूरी का सबसे धैर्यनाम बाल-वेश्यावृत्ति है। एक अध्ययन के अनुसार 15 प्रतिशत वेश्याएँ किशोरवय में ही इस पेशे में आ गईं। भारत में आईपीसी के अन्तर्गत प्रति वर्ष घटित कुल अपराध लगभग 6 प्रतिशत महिलाओं के प्रति होते हैं। प्रति वर्ष 31,000 यातना मामले (पति व अन्य द्वारा), 28,000 छेड़खानी के मामले, 14,000 अपहरण के मामले, 14,000 बलात्कार, दहेज प्रताङ्कना सम्बन्धी 2,800 मामले एवं एक-दो मामले सती-प्रथा सम्बन्धी आते हैं।

महिलाओं की आर्थिक गतिविधि कुल आर्थिक गतिविधि का लगभग 50 प्रतिशत है, किन्तु आमदनी में उनका हिस्सा 34 प्रतिशत से अधिक नहीं है। प्रशासनिक पदों पर महिलाओं का प्रतिशत 2.3 है। असमानता के आँकड़े हर क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। शिक्षा के अवसर निरन्तर बढ़े हैं, किन्तु बहुसंख्यक बालिकाओं को लाभ नहीं मिल पाया है। स्वास्थ्य सेवाओं को भी अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँचाया जा सका है। गर्भवती महिलाओं में 50 प्रतिशत खून की कमी की समस्या से ग्रसित हैं एवं एक लाख जीवित मृत्युदर पर 30 प्रतिशत मातृ मृत्युदर है।

औद्योगिक एवं उत्तर-औद्योगिक विकास तंत्र एवं प्रौद्योगिकी ने नवीन अवसरों का सृजन किया है, किन्तु महिलाओं की आर्थिक विपन्नता के आँकड़े बढ़े हैं। विडम्बना है कि विकास की गति के बावजूद महिलाओं की स्थिति में आशानुकूल सुधार नहीं हुआ है बल्कि कुछ क्षेत्रों में तो स्थिति बदतर हुई है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से महिलाओं के समक्ष चुनौतियों में इजाफा हुआ है। भूमण्डलीकरण के अन्तर्गत, निजीकरण एवं उदारीकरण को नीतियों ने सार्वजनिक उपक्रमों पर व्यय को घटाया है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव निर्धन तबके के आय एवं उपभोग के स्तरों पर पड़ा है। विश्व जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा महिलाएँ हैं। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्ययनों द्वारा स्पष्ट हुआ है कि निर्धनता के लैंगिक आयाम निरन्तर बढ़ रहे हैं। यह निर्धनता का महिलाकरण है। निश्चय ही इसमें भूमण्डलीकरण के आर्थिक कारकों की भूमिका है। भूमण्डलीकरण से 'विशिष्ट प्रवीण' महिलाओं को अवश्य लाभ मिला है, विशेषतः सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में। किन्तु बहुसंख्यक महिलाएँ जिनके पास न प्रवीणता है, न संसाधन, हाशिये पर ही हैं।

लैंगिक समानता महिला सशक्तिकरण का आधार है। विभिन्न महिला संगठन, महिला आन्दोलन, नारीवादी विचारक तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठन एवं कानून स्त्री की स्वतन्त्रता, समानता, अस्मिता, न्याय और गरिमा की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हैं; किन्तु अथक् प्रयासों तथा उपायों के बावजूद लैंगिक असमानता विद्यमान है। इस संदर्भ में डॉ. राम मनोहर लोहिया का कहना था कि मानवता की आधी पूँजी के रूप में स्त्री का सहयोग लेना विकास के लिए आवश्यक है तथा यह तभी सम्भव है जब हम स्त्रियों के प्रति समानता का दृष्टिकोण अपनाएँ तथा उन्हें पुरुषों के समान व्यवस्था और समाज में स्थान प्रदान करें।

डॉ. लोहिया ने महिलाओं, मुसलमानों व पिछड़े वर्गों के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की माँग रखी थी। यह अत्यन्त दुर्भाग्य एवं विषाद का विषय है कि यदि सैद्धान्तिक स्तर पर आरक्षण अनुचित एवं आपत्तिपूर्ण है तो सभी वर्ग के संदर्भ में होना चाहिए, सिर्फ महिलाओं के संदर्भ में ही क्यों? अन्य वंचित वर्गों के विकास के लिए यदि आरक्षण उचित रणनीति है तो महिलाओं के लिए क्यों नहीं? क्या महिलाएँ वंचित नहीं रही हैं? सामाजिक न्याय के कथित पक्षधर इस प्रस्ताव का सर्वाधिक विरोध कर रहे हैं। वे भारतीय महिलाओं को 'अगड़े' व 'पिछड़े' वर्ग में बाँटने का घृणित अपराध भी कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि महिलाओं का 33% आरक्षण का बिल राज्यसभा में पास हो चुका है, ताकि 'महिला आरक्षण' के प्रश्न पर आम राय न बन सके। यह सत्य है कि मात्र आरक्षण देने से महिलाओं के स्तर में परिवर्तन नहीं आ जाएगा। ऐसी स्थिति में पुरुषों तथा स्त्रियों को मिलकर समता तथा समृद्धि पर आधारित नव-भारत का अभियान चलाना होगा, अन्यथा सशक्तिकरण का सपना बस एक सपना ही बन रहेगा। यह तभी होगा जब हम सब मिलकर आधी आबादी की दशा सुधारने का संकल्प लें और उसे कार्यान्वित करने का मन बनाएँ।